अंतर्मन की अनकही

(17.02.2022)

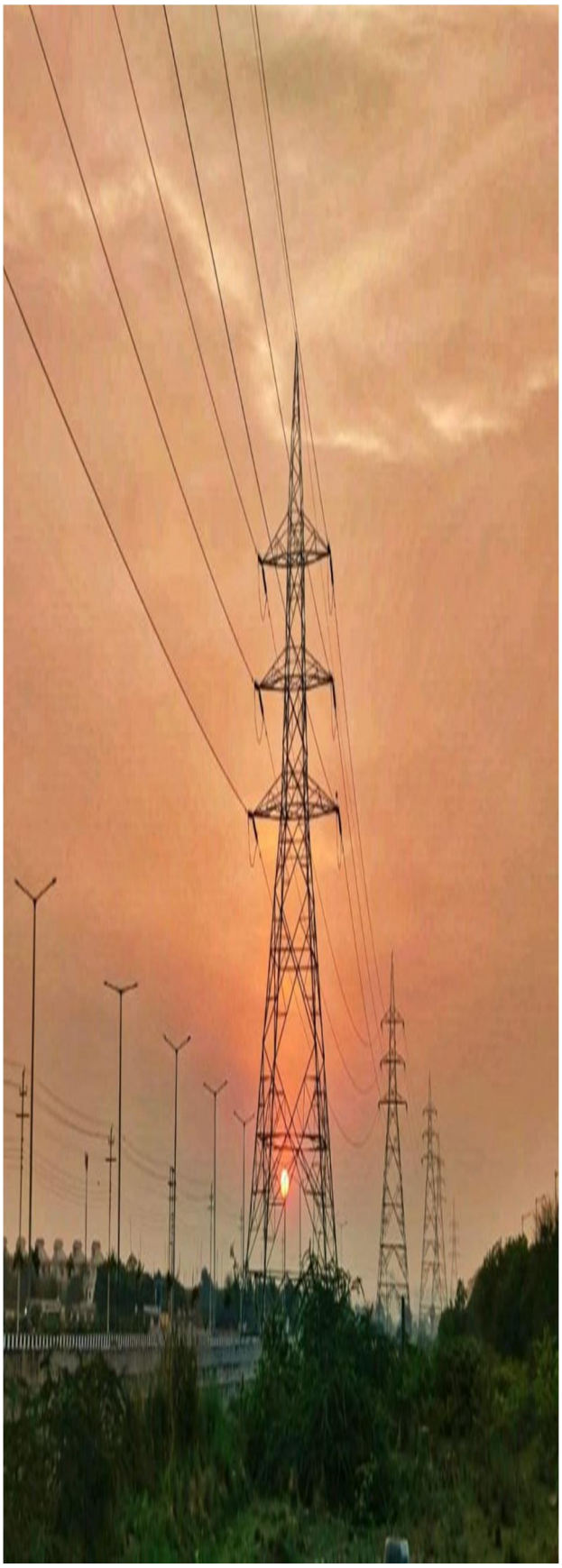

ये अंत: चेतना है मेरी? या कोई विवशता सी
उस व्याकुल मन की जो ना चाहते हुए भी
अनकही कह जाती है!

और किस मिट्टी के माधो हो तुम? जो सिर्फ अधरों की थिरकन से
ही जान जाते हो हाल-ए-दिल मैं इशारे से भी कुछ न कहुँ अगर
भावार्थ तक पहुँच जाते हो तुम।

क्या ये मन की चंचलता है? या है मेरा मुझ से ही मिलन
खुद से खुद का साक्षात्कार? या कुछ प्रश्नों के सरल उत्तर
वर्षों से लग रहे थे इतने कठिन

तुम इंसान हो या सिर्फ़ एक खूबसूरत अहसास
इक हवा का झोंका हो या मेरा मुझ पर विश्वास
क्यों पहेली से लगते हो ऐसे? वो भी तब, जबकि महसूस
से होते हो मेरे अपने ही श्वास।

क्यूं लगता है ऐसा कि एक गर्द की चादर थी
लिपटी हुई मेरी नन्ही सी आत्मा के इर्द गिर्द
तुम यकिनन ख्वाब तो नहीं! जिसने बिन छुऐ ही धूल को
कर दिया इस तरह जीर्ण शीर्ण।

वो और नहीं कोई... अपने ही थे जिन के मंजर पर
टूटा था महल मेरे सपनों का! खामोशियों को नजर अंदाज कर
अभिमान भी धोखे से स्वाभिमान बन बैठा था मेरे अपनो का।

इस धन रूपी मायाजाल में वो समझ ही न पाए....
न तन को, न ही मन को और तुम एक ही पल में
कैसें आंक गए मेरी व्यथा मेरे स्वच्छ अंतर्मन को!
और दे गए सुखद आश्चर्य बिना किसी सात फेरों के
जैसे एक गंधर्व विवाह कथा वो तमाम उम्र मेरे साथ रहे
फिर भी कभी न आसपास रहे तुम कल का स्वप्न होकर भी
पुनर्जन्म का एक अवतार रहे तुम दूर भी थे तो मेरे पास रहे
जब पास में थे तो पाक रहे!

आखिर कौन हो मेरे हम दम? जो परछाई सी बन आए हो
मैं तो ये जीवन जैसे जी चुकी थी फिर क्यों ये बहार सी ले आए हो
इतना तो बताओ अदृश्य बाजीगर! कि भ्रम हो, या मोहमाया मात्र?
या यथार्थ में सुबह का आवाहन जो संकेतक है इक नई शुरुआत की
मेरे स्व-उत्थान और नई उड़ान की।